Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIII (53), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय ज्ञान परंपरा और अज्ञेय के निबंध

अंजलि पाण्डेय* प्रो.(डॉ.) राजेंद्र सिंह**

* शोधार्थी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राज.) भारत
** प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, उदयपुरवाटी, झुंझुनू (राज.) भारत

शोध सारांश – भारतीय ज्ञान परंपरा जो वैदिक काल से वर्तमान तक प्रवाहित हो रही है तथा संसार की सबसे पुरानी ज्ञान परंपरा में से एक है। व्यवस्था या विचार समय की मांग के अनुसार यह सनातन ज्ञान परंपरा आधुनिकता के साथ परिवर्धित और संशोधित होती जिससे उनकी सापेक्षता सतत् विद्यमान है। सती प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत जैसी कुरीतियों को मिटाकर हमने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। भारतीय ज्ञान परम्परा में वैज्ञानिकता, तर्कशीलता एवं तटस्थता विद्यमान है, जो भारत को दुनिया के समक्ष विश्वगुरु के रूप में पहचान दिलाती है। भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रसार साहित्य के माध्यम से होता आया है जिसमें अज्ञेय का नाम एक अत्यंत आवश्यक कड़ी है। जो समस्त ज्ञान परंपरा के समायोजन पर बल देते हैं किंतु तर्क पूर्वक। पाश्चात्य परंपरा से आक्रांत ना होकर वे उसकी खामियाँ भी देखते हैं तथा हमें हमारी परंपरा की ओर उन्मुख करते हैं। साथ ही ऐसे मानकों के गठन का पक्ष रखते हैं, जो हमारी ज्ञान परंपरा को चक्रीय क्रम से आगे बढ़ाते रहें। प्रस्तुत शोध आलेख में अज्ञेय की इसी व्यापक दृष्टि का मूल्यांकन भारतीय ज्ञान परंपरा के परिपेक्ष्य में किया गया है।

शब्द कुंजी – वैज्ञानिकता, तर्कशीलता, परंपरा, संस्कृति, इतिहास, राजनीति, सहृदयता, सनातन धारा, सम्यक ज्ञान, स्वायत्तता, सर्वांगीण विकास।

प्रस्तावना – वैदिक काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा की स्रोतस्विनी प्रवाहित हो रही है। चतुर्वेद से होते हुए उपनिषद और पुराण इसकी धारा के महत्वूर्ण अंग हुए हैं। वेदों पर लिखी टीकाएँ(वेदांत) इनकी सहज व्याख्या करते हैं। महाभारत, रामायण आदि ग्रंथ तात्कालिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य के जीते-जगाते स्वरूप हैं, जिसका तात्पर्य सर्वांगीण विकास से है। भारत में गुरुकुल व्यवस्था थी, जिनमें शास्त्र का ज्ञान दिया जाता था वहीं शस्त्र विद्या भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। महाभाष्य, पुराण आदि इसके प्रमाण हैं। गुप्त काल को हमारे इतिहास का स्वर्ण काल कहा जाता है। विशाखदत्त, गुप्त काल के प्रसिद्ध रचनाकारों में से एक थे जिन्होंने मुद्राराक्षस की रचना की। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन कवि कालिदास जिनकी शेक्सपियर से तुलना की जाती है, ने अभिज्ञानशकुंतलम्, कुमारसंभवम् एवं मेघदूतम् आदि महनीय रचनाएं की। मौर्यकालीन विष्णुगुप्त ने अर्थशास्त्र लिखा जिसकी तुलना मैकियावेली के प्रिंस से दी जाती है। सेल्यूकस निकेटर के द्वारा मेगस्थनीज को चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा गया, जिसने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सात भाग में बंटे होने का वर्णन किया तथापि दास या गुलाम व्यवस्था का कोई वर्णन नहीं मिलता। पाणिनि जैसे प्रभृत विद्वान जिन्होंने अष्टाध्यायी की रचना की, इसी पुस्तक के एक नुक्तो पर अध्ययन करते हुए 'फर्दीनांद, दी सास्यूर' ने संरचनावाद की कल्पना की। अश्वघोष,नागार्जुन,पार्श्व जैसे विद्वान कनिष्क के दरबार में सुशोभित थे तथा शुंग काल में पतंजलि जैसे महान विद्वान हुए। इस ज्ञान परंपरा में सतत ऐसे विविध ग्रंथों की रचना हुई,जो भारतीय ज्ञान परंपरा को सर्वांग विकसित करते हैं। इन ग्रंथों में केवल बौद्धिक और सामाजिक विकास को ही लक्ष्य ना रख कर आंतरिक और मानसिक विकास को भी केंद्र में रखा गया है। विविध प्रकार के दर्शन विकसित किए गए हैं जिनसे हम अपनी आध्यात्मिक ज्ञान पिपासा को शांत कर सकते हैं। आत्म की पहचान के लिए निरंतर परिवर्तित होते परिवेश और सामाजिक व्यवस्था के आधार पर विविध दर्शन विकसित किए गए जैसे पूर्वमीमांसा आचार्य जैमिनि का, सांख्य दर्शन कपिल मुनि का, वैशेषिक दर्शन महर्षि कणाद, योग दर्शन महर्षि पतंजलि आदि। इन समस्त पुस्तकों में संस्कृति के परिवर्तित होते स्वरूप की गतिमानता की परिपुष्टि है जिससे भारतीय ज्ञान परम्परा की सनातन धारा प्रवाह प्रत्यक्ष होती है।परिवर्तन और परिवर्धन ही ज्ञान का आधार है। बुद्ध ने भी तत्कालीन समय में व्याप्त कठोर हिंसात्मकता व रुढ़ि के विरुद्ध तर्क सिखाया तथा सम्यक् भारत बनाने का प्रयास किया जिसका प्रमाण हमें आज भी हमें विश्व के कई हिस्सों में देखने को मिलता है। गतिशीलता और संशोधन ही किसी ज्ञान परंपरा के मूल हैं।आचार्य श्यामचरण दूबे के शब्दों में 'संस्कृति जड़ नहीं होती है, गतिशीलता उसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। मानव जीवन की आवश्यकताओं और समय-समय पर प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों में सामंजस्य बनाये रखना उसका एक मुख्य उद्देश्य है। अत: यह स्वाभाविक ही है कि संस्कृति के गठन और उसके मूल्यों में समय-समय पर परिवर्तन हों। गतिशीलता का अभाव संस्कृतियों को विघटन की दिशा में उन्मुख कर उनके क्रमिक ह्रास और मृत्यु का कारण होता है'।

मध्यकालीन आक्रमणों के समय से इस ज्ञान गंगा के क्षत होने के प्रमाण मिलने लगते हैं । भारतीय ज्ञान के स्रोत का नालंदा विश्वविद्यालय जीता जागता उदाहरण था, जिसे बख्तियार खिलजी के द्वारा विध्वंस करने पर छह माह केवल पुस्तकें ही जलती रहीं। यहाँ से भागे बौद्ध भोट आदि देशों में जो पुस्तकें ले जा सके उनका संकलन संकृत्यायन जी ने बाद में किया।'बिहार के नालंदा और विक्रमशिला इनके अड्डे थे। बख्तियार खिलजी ने इनको जब उजाड़ा तो ये तितर-बितर हो गए । बहुत से भोट आदि देश चले गए । पीछे त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन जी भोट देश जाकर सिद्धों

की बहुत सी रचनाएं लाए'।

औपनिवेशिक काल में इस चेतना को गहरा धक्का लगा मैक्समूलर से लेकर मैकाले भारत के प्रत्येक क्षेत्र में पहुँचे संस्कृति को जाना तथा उसे झाड़-फूँक तक सीमित कर दिया व स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के हर तरीके अपनाये। इन समस्त हिमाकतों के खलिाफ भारतीय साहित्यकार अपनी लेखनी चलाते रहे हैं। जिनमें भारतेंदु हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथराय, विवेकी राय,रामचंद्र शुक्ल विद्यानिवास मिश्र,महावीरप्रसाद द्विवेदी अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि हैं। जैसे विद्यानिवास मिश्र ने गंगातट से भूमध्य सागर में राफेल अर्गुलायी के समक्ष हमारी ज्ञान परंपरा को सबको सहेजने वाली बताया है।'आप(राफेल अर्गुलायी यानी पाश्चात्य परंपरा)एकांत तक सभी उपलब्धियों के माध्यम से पहुंचना चाहते हैं जबकि हम एकांत से अपनी यात्रा प्रारंभ करते हैं। किंतु हम अकेले नहीं रहना चाहते हम अपने आप को दूसरे में देखना चाहते हैं'।

इसी औपनिवेशिक एक तरफे विचार के विरुद्ध अज्ञेय अपनी लेखनी चलाते हैं। अज्ञेय स्वयं क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल थे व भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त आदि के साथ बम इत्यादि बनाते थे। भारतीय ज्ञान परंपरा और वर्तमान को वे तार्किक पक्ष से देखते हैं तथा जो विचार रूढ़ि या संकुचित हो चले हैं उनको कटाक्ष करके एक तरफ करने की कोशिश करते हैं। भारतीय ज्ञान साहित्य और पुस्तकों में ही संचित होता आया है। वे मानव समाज में सौहार्द की बात करते हैं।पाश्चात्य परंपरा ने जो हमें बर्बर और असभ्य कहते थे उनपर कटाक्ष किया कि सदियों की फैलाई हुई अशांति उनके कारण है।'सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े न होते तो सदियों तक लूट-पाट और हिंसा के आधार पर ही अपनी प्रभुता और संपन्नता बढ़ाने में कैसे लगे रहते।''पश्चिम के दोनों देश अपने कुकर्मों पर परदा डालना चाहते हैं, कुछ पुराने कुकर्मों पर और कुछ ऐसे भी जो पुराने नहीं हैं, जो हमारे जीवन काल में किए गए हैं,बल्कि कुछ तो इस समय किए जा रहे हैंयऔर पूर्व अपनी कमजोरियों पर पर्दा डालना चाहता है।'

पाश्चात्य परम्परा के द्वारा विश्व को तीन हिस्सों में विभाजित किया गया जिसमे भारत जैसे देशों को तीसरी दुनिया में विस्थापित किया गया और उन्हें ज्ञान शून्य माना गया किंतु संस्कृति के ज्ञान और तार्किक विचारों के पक्षधर अज्ञेय इस बात से नकार देते हैं कि हम तीसरी दुनिया से हैं वे तो तीन दुनिया मानने से ही इंकार कर देते हैं। समग्र विश्व को एक आंतरिक सूत्र में बंधा हुआ मानते हैं।'दुनिया पहली, दूसरी और तीसरी नहीं है' दुनिया एक है और उसका कोई हिस्सा दूसरे हिस्सों के सहारे के बिना नहीं जी सकता और यह बात अकेले एक आर्थिक स्तर की नहीं है। रिश्तों में हमें यह भी पहचानना होगा कि आर्थिक संतुलन भी प्राकृतिक, जैविक और सांस्कृतिक संतुलनों से अलग या उसके बिना नहीं है। कोई संतुलन ही नहीं है जब तक कि मानव के समग्र विकास,समग्र आकांक्षा, समग्र उपलब्धि को ध्यान में न रखा जाए।' साथ ही दोनों दुनिया को अमेरिका-यूरोप तथा रूस को यन्त्रवत् तथा सहिष्णुहीन मानते हैं अज्ञेय लिखते हैं 'कुछ देश विकसित संस्कृतियों वाले हैं और कुछ देश विकसित अर्थ तंत्र वाले हैं और दोनों को सहारे की जरूरत है या कि दोनों पर कुछ पाने की ही नहीं देने की भी जिम्मेदारी है'।

अज्ञेय पाश्चात्य संस्कृति से आक्रांत युवा को तर्कशील और किसी भी संस्कृति को मानने से पहले उसे परखने की ओर सजग करते हैं। चाहे वह हमारी ही पुरानी परंपरा क्यों ना रही हो!वे भारत की आत्मा को खोजते हुए हमें परंपरा से जोड़ते हैं और साथ ही पाश्चात्य जो हमे लंबी परंपरा के बोझ से दबा हुआ घोषित करता है उसके खलिाफ वे हमारी चक्रीय संस्कृति और परंपरा की बात कर उपलब्ध विपुल ज्ञान स्रोत से उपयोज्य को निकाल कर उपयोग करने का मार्ग देते हैं।' जिसे हम भारत की आत्मा कहते हैं, वह वास्तव में आत्म और अनात्म का,जीवित और जड़ का एक पुंज है, जिसकी परीक्षा की आवश्यकता है, परीक्षा करके जड़ को अलग रख देना होगा, चाहे पुरातत्व संग्रहालय में ही,और जीवित को आगे बढ़ाना होगा।'। यही वार्ता महाउपनिषद् में 'अयम् निज: परोवेति गणना लघु चेतसाम् के तौर पर रखी गई है। आज विश्व पुन: तृतीय विश्व युद्ध की कगार पर खड़ा है राजनीति और विश्व में अशांति व्याप्त होती जा रही है ऐसे में भारतीय ज्ञान परंपरा की आवश्यकता अधिकतम होती जा रही है। महाभारत के कथानक से जहाँ हम युद्ध की विभीषिका का दृश्य देख-समझ सकते हैं वहीं उससे बचने का मार्ग भी निर्धारित कर सकते हैं। अज्ञेय स्वयं क्रांति के समय सक्रिय रहे थे उन्हें अशांति और परंपरा का कहीं विषद् ज्ञान है।वे क्रांति को तभी आवश्यक मानते हैं जब वह अत्यंत आवश्यक हो अन्यथा वे तो तथागत के सत्य की तरह तार्किक और मध्यम मार्गी हैं। वे तत्कालीन समाज में व्याप्त अव्यवस्था और कुप्रथाओं के भी विरोध में लिखते हैं तथा उसको एकदम नकार देते हैं क्योंकि यह भारतीय समाज के विकास में बाधक हैं 'छुआछूत तो बिलकुल मैं अग्राह्य मानता हूँ। अपने जीवन में मैंने उसके लिए कोई स्थान नहीं रखा। जात-पांत को भी बहुत बड़ा एक सामाजिक अन्याय मानता हूँ। इस सब चीजों को तोड़ना चाहिए और बड़े सहज भाव से तोड़ी भी जा सकती है,अपने से आरंभ करते हुए।'

अन्वेषण की आवश्यकता को अभिव्यक्त करते हुए ऐतिहासिक विवेचन के साथ कलात्मक विवेचन को भी आवश्यक मानते हैं कहते हैं 'कोई भी कलावस्तु चाहे कितनी भी नई क्यों ना हो, ऐसी वस्तु नहीं है जो अपने आप में घटित हो गईयवह ऐसी वस्तु है जो अपने आप में नहीं,अपने पूर्ववर्ती तमाम कलावस्तुओं की परंपरा के साथ घटित हुई जितनी वह नई है,उतनी ही महत्वपूर्ण घटना कलावस्तुवों की परंपरा के साथ घटित हुई,उतना ही परंपरा के साथ उस संबंध का अन्वेषण करना प्रासंगिक हो गया।' 'वे निरंतर हमारी परंपरा में जागरूकता को देखते हैं तथा जागरूक करने की ओर उकसाते भी हैं ताकि हमें बहलाया ना जा सके।' जागरूकता का मुख्य उपकरण है एक ऐतिहासिक चेतना-अर्थात् जो कालानुक्रम में बीत गया है,अनीति है,उसके व्यतीत की ही नहीं,उसकी वर्तमानता की भी तीखी और चिरजाग्रत अनुभूति है'। वह कुछ छोड़ने की बात नहीं करते वरन सबको एक साथ लेकर निरंतर दुष्प्रवृत्तियों के परिमार्जन के पक्षधर हैं।साथ ही अपने आप को सगर्भ स्वीकार करने की बात करते हैं।वे समस्त भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वय के बात करते हैं और कहते हैं कि 'वाल्मीकि के लिए वेदों को,कालिदास के लिए वाल्मीकि को,या मैथिलीशरण गुप्त के लिए वह तुलसीदास को वह छोड़े नहीं देतायवह इन सब को अपनी प्रवाहमानता के लम्बे सूत्र में बाँधे चलता है' यही समन्वय भावना भारतीय ज्ञान परंपरा का लक्ष्य है।जो आत्मा के साथ शरीर और शरीर के बाद समाज को सम्मिलित कर एक उत्कृष्ट लक्ष्य की ओर उन्मुख करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा सत्य और अभीष्ट की खोज के लिए तर्क का संकुल सामने रखती है जिससे हम स्वयं की सार्थकता की पहचान के साथ औपनिवेशिक मानस में न उलझ तर्कशील बने रहें। अज्ञेय के साहित्य में निरंतर स्वतंत्रता की खोज, स्वयं की खोज की व्याकुलता विद्यमान है कह सकते हैं की बौद्ध धर्म में दीक्षित ना होने पर भी अज्ञेय बौद्ध

मत प्रभावित प्रतीत होते हैं अस्तित्ववाद की झलक भी अज्ञेय में परिलक्षित होती है। अज्ञेय का साहित्य प्रत्येक को स्व संशोधन के लिए उत्प्रेरित करता है और संयम, शील, सहज विचारपूर्ण होने का समर्थन देता है जो भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल में है जैसा कि गीता में भी ज्ञान ,कर्म और भक्ति को समकक्ष रखा गया है। वे लिखते हैं 'अतीत को हम मिटाना नहीं चाहते, उसे छोटा भी नहीं करना चाहते लेकिन हम उसकी दुहाई भी नहीं देते, परास्त होकर उसके समक्ष झुकते भी नहीं।हम अतीत के प्रति एक नए दृष्टिकोण की माँग करते हैं वर्तमान में उसके स्थान की नई परिकल्पना करते हैं ,हमारे लिए वयस्कता शैशवावस्था का खंडन नहीं हैय उससे संबद्ध और प्रस्फुटनशील विकास का बोध है ।' तत्कालीन समय में कैंसिल कल्चर ,वॉकिज्म जैसी नवीन संस्कृति जहाँ कुछ भी अमानक व्यवहार या व्यवस्था का सद्य बहिष्कार करे देती हैं और खत्म कर देती हैं वही अज्ञेय खात्मे के स्थान पर वैज्ञानिक संशोधन का पक्ष रखते हैं। उनका मानना है कि मूल जानना,इतिहास जानना, स्वयं की चिति को जानना उसमे संशोधन करते रहने से हम वैश्विक पटल पर ज्ञान परंपरा को और अग्रसर कर पाएंगे।

'असल में समस्या यही है कि हमारे पास आज किसी चीज को मापने के लिए मापदंड नहीं है ।पुराने माप कुछ तो पुराने थे ही,घिसघिसा गए थे और नया शोध माँगते थे, कुछ को हमने अवज्ञा और कुशिक्षा और शक्ति लालसा और परमुखापेक्षिता और दास्य वृत्ति नहीं तो अनुकरण वृत्ति से नष्ट कर दिया ।यह बात साहित्य पर ही नहीं लगती ,हमारे सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन की ओर भी लगती है।' वे आवश्यकता पड़ने पर ज्ञान परंपरा में घिसे मानकों को निर्दयता से निष्कासित करते हैं।जिससे कि हमारी ज्ञान परंपरा की स्रोतस्विनी सतत् उन्नतशील रहें। स्वयं की स्वायत्तता विद्यमान रहे। वर्तमान में 23 सितम्बर 2025 को आयुष दिवस घोषित किया गया जिसमें आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी,सिद्ध और होम्योपैथी की महत्ता के बढ़ावे का प्रयास सक्रिय।यह हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा के सुदृढ़ीकरण का सशक्त रूप है जिसे नेपाल,बांग्लादेश, मलेशिया, मॉरीशस, मंगोलिया, जर्मनी, ईरान, जापान, भूटान, श्रीलंका, रूस, अमेरिका, ब्राजील, और दक्षिण अफ्रीका देशों ने अपनाया है तथा यूरोपीय देश रोमानिया, हंगरी, लातविया, सर्बिया और स्लोवेनिया जैसे देश आयुर्वेदिक उपचारों को विनियमित (Regulate) करते हैं तथा इसकी मुख्यता और मूल्यता को स्वीकार करते है। ऐसी ही उन्नत शीलता और ज्ञान के सर्वांगीण विकास के पक्ष में अज्ञेय हैं।

निष्कर्ष – भारतीय ज्ञान परंपरा को सतत् तर्कशील और विज्ञानमय बनाने हेतु अज्ञेय एक चिकित्सक की भाँति विचार करते हैं जैसे शरीर के घाव का वह निर्दयता से उपचार करता है उसी भाँति यदि संस्कृति में कहीं सामाजिक कुप्रथा या की वैचारिक असमानता है,पुराने घिसे निरर्थक मानक है तो उन्हें बदलने के लिए संकोच नहीं करते ताकि सनातन ज्ञान निर्विघ्न गतिमान रहे। भारत योग में,दर्शन में,अपने संस्कृतिक मूल्यों हेतु विश्व विख्यात हो रहा है साथ ही आयुष जैसी पहल जो भारतीय ज्ञान परंपरा के नवीन-नवीन मानकों के लिए आवश्यक है की प्रत्येक युवा अपने इतिहास और परंपरा को समझे जाने जिससे पुन:कोई शक्तिशाली सत्ता किसी अन्य देश को तीसरी या हेय दुनिया घोषित ना कर सके। वर्तमान समय में अज्ञेय के प्रगतिशील और तर्कशील विचार हमारे लिए एक नया मार्ग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्यामाचरण दूबे, मानव और संस्कृति, (संस्कृति-परिवर्तन), राजकमल प्रकाशन, पहला पेपरबैक संस्करण-1993
2. राम चंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास,नगरी प्रचारिणी सभा, काशी,सत्रहवां संस्करण।
3. विद्यानिवास मिश्र - राफेल अर्गुलायी, गंगा तट से भूमध्य सागर तक, सस्ता साहित्य मंडल 2013
4. संकलन: कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय प्रतिनिधि निबंध(कला भाषा और औपनिवेशिक मानस), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, संस्करण-2011
5. चयन और संपादन, नंदकिशोर आचार्य, अज्ञेय के उद्धरण, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2019
6. अज्ञेय, त्रिशंकु(संघर्ष युग में भारत) रूढ़ि और मौलिकता, सरस्वती प्रेस बनारस, मुद्रक श्रीपत राय कॉपीराइट 194
7. अज्ञेय,प्रतिष्ठाओं का मूल स्रोत, आत्मनेपद,अज्ञेय भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण 2010 रुचिका प्रिंटर्स दिल्ली।

****